अस्थि-कलश

रचयिता—जगदीश 'पङ्कज'

प्रकाशक—शिक्षा साहित्य प्रकाशन
१८३, वाणी-विलास, राजेन्द्रनगर,
लखनऊ

मुद्रक :—
वन्देमातरम् प्रेस
ऐशबाग-रोड
लखनऊ—४

प्रथम संस्करण—अक्टूबर १९६४

मूल्य सजिल्द—
एवम् सचित्र—तीन रुपये
मूल्य अजिल्द—एक रुपया पचास पैसै

श्री जगदीश 'पङ्कज'

दो शब्द

नव-रस-कलश धारिणी वीणापाणि के चरणों में इस बार करुण 'अस्
कलश' अर्पित है। अपने जवाहर को खोकर भारत ही नहीं, सारा विश्व
उठा। आँसुओं की गंगा यमुना उनकी अस्थियों के महा विसर्जन के लि
संगम पर समा गईं। हृदय में बलवती स्पृहा होने पर भी 'अस्थि-कलश'
शान्ति-घाट से संगम की यात्रा को आँखों में न भर सका। आँखें रो रहीं थ
पर भावना ने स्वयमेव उस महायात्रा को मूर्तरूप देने को आतुर कर दिय
करुण-रस का वह समस्त जल इस 'अस्थि-कलश' में भर गया है। इस
कुछ बूँदें यदि पाठकों में इस महामानव की स्मृतियों को ताजा कर सकीं,
अपने को सफल समझूँगा।

जिन साथियों के सहयोग से यह कृति प्रकाशन में आ सकी है उन स
के प्रति मैं आभारी हूँ।

—जगदीश 'पङ्कज'

समर्पण

महा-मानव, जन-नायक, प्रधान मंत्री,

स्वर्गीय पंडित जवाहर लाल नेहरू,

के प्रति

अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए

यह काव्य-सुमन

उन्ही की सुपुत्री

'श्रीमती इन्दिरा गांधी'

के

कर कमलों में

सादर समर्पित—

— जगदीश 'पङ्कज'

श्रीमती इन्दिरा गांधी

प्रस्तावना

पिछले आठ-दस वर्षों में उत्तर-प्रदेश ही नहीं, हमारे विशाल हिन्दी भाषी क्षेत्र में सर्वत्र और प्राय: होने वाले कवि-सम्मेलनों के मंच से एक नये कवि की प्रतिभा ने हमारे जन-साधारण को खूब ही प्रभावित किया और इस नयी प्रतिभा के धनी हैं— कवि श्री जगदीश 'पङ्कज' जी। कुछ कवि सम्मेलनों की अध्यक्षता के बहाने मुझे भी पङ्कज जी की रचनाएँ सुनने के सुअवसर प्राप्त हुए और इस तरह परिचय हो जाने पर मुझे उनके कुछ काव्य-संग्रह भी पढ़ने को मिले। स्वर्गीय श्री शिशुपाल सिंह 'शिशु', श्री बलबीर सिंह 'रंग' और श्री जगदीश 'पङ्कज' इन तीन कवियों के लिए मैंने जनसाधारण में जो श्रद्धाभरी ललक उमड़ते हुए देखी है उसे सहसा नजर-अन्दाज नहीं किया जा सकता। मेरी समझ में इन तीनों कवियों की सफलता का एक मात्र कारण है उनकी संस्कारानुशासित भावुकता। दर-असल यह संस्कार ही इन कवियों को अपने जन-समाज से एक कर देते हैं। जहाँ भाव-सत्य से ज्ञान उपजता है वहाँ औसत बुद्धि-चेतना का साधारण जन भी अपने मन में सहज-भाव से ज्ञान-स्पर्श पा जाता है। अपने भाव को इस स्तर तक पहुँचा देने के कारण ही जनता इन कवियों को दिल से चाहती है। 'हाइ-ब्रो' साहित्यिक सारी दुनिया में एक जैसा ही है, उसका पाठक समाज भी वैसा ही प्रबुद्ध है, ऐसे 'साहित्यिक-कवि' विशाल जन-समूह वाले कवि-सम्मेलनों में प्राय: औसत-समझ और भाव-भूमि से काफी ऊँचे उठे होने के कारण लोगों की समझ में नहीं आया करते। जनता उनके काव्य से अधिक उनकी प्रसिद्धि को ही जानती और मानती है, उनकी प्रसिद्धि को ही वह अपनी श्रद्धा भी देती है, उनकी काव्य-प्रतिभा को नहीं दे पाती। कवि-सम्मेलनों में किसी ऐसे सुनाम-धन्य कवि की कविता उस तरह जम नहीं पाती जैसे कि

उपरोक्त कवियों अथवा और भी बहुत से लोगों के काव्य जम जाते हैं। लेकिन इससे हमें न तो उन सुनाम-धन्यों को असफल मानना चाहिए और न इन लोकप्रिय कवियों की सफलता को किसी हीन कसौटी पर ही कसना चाहिए।

मैंने जानबूझ कर ही इस प्रसंग को उठाया, आमतौर पर हमारे आलोचक अपने 'हाइ-ब्रो' संस्कारों के वशीभूत होकर साहित्य के दिग्‌दिगन्तों को प्रायः सही ढंग से नहीं पहिचान पाते। मैं समझता हूँ कि आलोचक के लिए जहाँ कला के लिए कला, शून्य के लिए शून्य और सिद्धान्त के लिए सिद्धान्त वाली विचार-धारा पर चलना सही है वहाँ ही समाज के लिए व्यक्ति और व्यक्ति के लिए समाज वाले सिद्धान्त को पूर्ण मन से, पूर्ण चेतना से स्वीकार करना भी नितान्त आवश्यक है। हम जहाँ नव्य-साहित्य की धारणाओं को नव्य प्रबुद्ध-पाठक, नव्य प्रबुद्ध-जनवर्ग तक ही सीमित करके देखते हैं वहाँ हमें सबसे बड़ा घाटा यह होता है कि हम अपने बहुसमाज के विभिन्न भाव-चेतना वाले स्तरों का मूल्य और महत्व नजर-अन्दाज करके स्वयं अपने ही हाथों से अपने सरस्वती-मंदिर के द्वार बंद कर देते हैं। हम चाहे जिस भाव-चेतना के स्तर पर क्यों न रहते हों यदि अपने आस-पास के, विभिन्न स्तरो को दृष्टि-ओझल कर देते हैं तो खुद हमें अपनी भाव-चेतना का मूल्य-मान भला कैसे मिल सकेगा। साहित्य रचना व्यक्तिगत अहंता से सम्बन्धित वस्तु भी है यह माना, लेकिन साहित्य उसी तरह, पाठक-समाज की अहंता से मुड़ी हुई वस्तु भी है। ऐसे बहु-समाज को सस्ती, ओछी और नाकारा भावनाओं और विचारधाराओं से खूब-खूब उछाल कर फिल्म-स्टारोपम चमकदार लोकप्रियता भी हासिल की जा सकती है और खूब की जा सकती है। ऐसे भाव-बुद्ध पिशाचों से हमारे बहु-समाज को जो कवि रोज-ब-रोज ऊँचे भाव-चेतना के स्तरों पर लाकर लोक-प्रियता कमा रहे हैं उनकी लोक प्रियता को समझना हमारे हर समाजवादी मानवतावादी आलोचक का परम कर्त्तव्य है। यह सचमुच बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हम ऐसे कवियों की लोकप्रियता को देखकर भी अनदेखा कर जाते हैं।

मैने जगदीश 'पङ्कज' की कई रंगों की कविताएँ सुनीं, कवि-सम्मेलनों में और अपने या किसी व्यक्ति के घर पर भी, ऐसे अनेक अवसर पाये हैं। उनकी आवाज तो चुम्बकीय है ही पर यह कह कर उनकी काव्य प्रतिभा को टाला नहीं जा सकता। मैंने 'पङ्कज' जी की रचनाएँ पढ़ी भी हैं, उनका भाव-व्यक्तित्व मेरे सामने इस प्रकार आता है--

१—भक्त-भावुक— जैसा कि हमारा औसत हिन्दू समाज है।

२—दार्शनिक-विचारक—जैसा कि हमारा औसत प्रबुद्ध (जिसे पुराने शब्द में कुलीन भी कहा जा सकता है) समाज को प्रिय है।

३—भाव-संजय रंगीन— जैसा कि हमारा औसत प्रबुद्ध और अल्प-प्रबुद्ध (कुलीन, अकुलीन) समाज होता है या होना चाहता है।

४—रीतिकाल, छायावाद और आधुनिक समाजवादी काव्यधारा का प्रभाव 'पङ्कज' जी के भाव-व्यक्तित्व पर खासा और खूब पड़ा है, और यह चार बातें मिलकर ही उन्हें लोकप्रिय कवि बना देती हैं।

मेरी कामना है कि 'पङ्कज' जी को, अकेले 'पङ्कज' जी को ही नहीं, बल्कि उनकी कोटि के सभी लोकप्रिय कवियों को कुछ भलेमानस समाजवादी, विद्वान और आलोचक शीघ्र से शीघ्र मिल जायें इससे इन लोकप्रिय कवियों और हमारे समाज, दोनों का ही कल्याण होगा।

खैर, यह तो विद्वानों का काम है और वे ही इसे करेंगे भी। अपने देश और काल की गति को देखते हुए मैं जानता हूँ कि निकट भविष्य में ऐसे आलोचक इस दिशा में अपने आप ही कदम बढ़ाये बिना न रह सकेंगे, यह समय की मांग है। अगर समाज को समाजवादी दिशा की ओर ही बढ़ना है तो साहित्य के अलोचक को भी हर हालत में एक न एक जगह इस वस्तु-सत्य को स्वीकार किये बिना निष्कृत ही नहीं मिलेगी।

जिस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने बैठा हूँ उसका सम्बन्ध एक जन-नायक से है। वह एक ऐसा नायक था जो पिछली आधी शताब्दी में सदा जवानी

और स्फूर्ति का प्रतीक बनकर ही हमारे सामने आया। लोगों के दिलों में उसने अजीब तरह से अपना सिक्का जमा लिया था। महान जन-नायक गांधी के बारे में तो नेहरू ने कई जगह लिखा है कि वे जादूगर थे, वे दिल खींचते थे, मगर स्वयं नेहरू के बारे में क्या यही बात सत्य सिद्ध नहीं होती ! नेहरू हमारा जादूगर था। गांधी हमारी बाबा पीढ़ी के थे और नेहरू पिता पीढ़ी के। मैं अपने बचपन के मनोभाव जानता हूँ, गांधी मेरे सम-वयस्क किशोर और नव-युवा समाज के लिए देव-पुरुष थे और जवाहर मानव। जहाँ हम गांधी के समान ऊँचे आदर्श तक नहीं उठ पाते थे, फिर भी हमारे अन्दर ऊँचे उठने की कामना नहीं हारती थी वहाँ जवाहर लाल ही हमारा जादूगर बनता था। जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रधान-मंत्री हुए, राष्ट्र ने उन्हें 'भारत-रत्न' का खिताब दिया, मगर उनकी पीढ़ी के जवानों और उनके आगे की पीढ़ी के किशोरों, नवजवानों ने उस जमाने में उन्हें जो 'युवक-हृदय-सम्राट' का खिताब और ओहदा दिया था उसका महत्व किसी तरह घटाया नहीं जा सकता। मेरे पास सन् १९२१ और १९३० के आन्दोलन वालों की प्रभात फेरियों में गाये जाने वाले गीतों के कुछ संग्रह हैं, मैं निश्चितरूप से कह सकता हूँ कि गीतकारों में लोकप्रियता की दृष्टि से जवाहर गांधी से तनिक भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहे। बेशुमार गीत, गजलें और कविताएँ लिखी गईं। मुझे गुजराती, तमिल और बंगला भाषाओं के राष्ट्रीय लोक साहित्य में भी यह बात देखने को मिली। गीतकारों में लोकप्रियता की दृष्टि से गांधी, नेहरू के साथ केवल एक सुभाष का नाम ही लिया जा सकता है, या फिर सुखदेव, भगत सिंह, राजगुरू और आजाद के ही नाम आते हैं। जवाहर लाल पर भारत की प्राय: सभी भाषाओं के सुनाम-धन्य कवियों ने भी अनेक सुन्दर और स्थायी काव्य रचनाएँ पिछले चार दशकों में लिखी हैं; लोक-साहित्य का हवाला तो ऊपर दे ही चुका हूँ। कवियों और लोक-कवियों का बड़ा काव्याधार २७ मई १९६४ को सहसा बुड्ढा होकर टूट गया, लेकिन कवियों की कौम होती बड़ी जिद्दी है उसका हठ वस्तुत: सत्य का हठ होता है। भौतिक देह विलीन हो गई, चन्दन काठ पर शान्ति-दूत महामानव की

शान्तकाया को जब अग्नि दी गई तो रेडियो पर कमेंट्री सुनते समय सहसा मेरे ध्यान में, केवल ध्यान में ही नहीं, मुख पर भी सन्त रैदास की एक पंक्ति आ गई—

"प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी अँग-अँग ज्योति समाती" सचमुच नेहरू के साथ यह उक्ति एक जगह पर पूरी सार्थक होती है, ऐसी चिता बुझने पर उसके भस्मावशेषों पर जन-भाव न लहराते, यह तो कभी हो ही नहीं सकता था। लोक-समाज के लिए कवि 'पंकज' जी ने स्वाभाविक रूप से ही इस विषय को उठाया और काव्य प्रतिभा में ढाल दिया। जन समुदाय को किसी बड़े से बड़े मजमें में इस लम्बी कविता को सुना कर ठीक उसी तरह से बाँधा जा सकता है जैसे कि नेहरू की अस्थि-कलश यात्रा फिल्म-डाक्यूमेंटरी दिखला कर। हूबहू वही रस बरस जाता है। दैनिक अखबारों की कृपा से उस मौके की अनेक तस्वीरें देखते रहने के कारण जनता के मन में अस्थि-कलश यात्रा की एक तस्वीर तो मौजूद होती ही है, बस:'पंकज' जी उसे काव्य के पंख लगा कर उड़ा भर देते हैं, यही इस पुस्तक की सफलता है।

काव्य का आरम्भ एक गीत से है जो विलाप-मग्न है। दूसरे गीत में अभिवादन किया गया। कवि देश के साथ ही साथ निष्क्रिय विलाप के क्षणों से उबर कर दिव्यात्मा की महत्ता को सकारता है और इसके बाद वह अपने कवि-कर्म के प्रति सचेत हो जाता है, उसकी दृष्टि केवल अस्थि-कलश पर है, उसके भाव उसमें केन्द्रित हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि विभिन्न स्टेशनों पर अस्थि-कलश दर्शन के लिए इकट्ठा होने वाली भीड़ के थे। अस्थि-कलश दिल्ली में प्रधान-मन्त्री निवास से प्रयाग के संगम में विसर्जित होने के लिए चलता है, लेकिन वह संगम तो कवि को वहीं दिखलाई पड़ रहा है—

पीछे 'शास्त्री' 'जाकिर हुसेन'
गंगा - यमुना थे बहा रहे।
संगम तो पीछे - पीछे था,
तुम आगे-आगे किधर चले॥ हे अस्थि-कलश०॥

अस्थि-कलश 'स्पेशल ट्रेन' दिल्ली से गाजियाबाद होती हुई अलीगढ़ पहुँच गई। यहाँ उसके दर्शनार्थ बेशुमार मुस्लिम नर-नारियों और बच्चों की भीड़ देख कर कवि उसके प्रभाव से उस अस्थि-कलश से सम्बन्धित आत्मा को पहिचानते ही अपने शोकमग्न क्षणों के बावजूद उसे अपनी इस नई पहिचान पर खुशी होती है। दुख में सुख का अनुभव अपनी स्थित में बड़ा ही अनोखा होता है। अलीगढ़ प्रसंग में चार पंक्तियाँ इसी स्वर में बोलती हैं—

"अभिनन्दन बन्दन करने को,
जन - जन के उर में दीप जले।
होली से आकर ईद मिले,
तुम इससे बन कर कुँअर चले॥ हे अस्थि-कलश०॥

प्रस्तुत काव्य में पहले के अनेक लोक-काव्यों की तरह ही एक ओर कवि, नेहरू के सिद्धान्ती व्यक्तित्व की महिमा पहिचानता और बखानता है वहाँ दूसरी ओर नेहरू और उनके परिवार के निजत्व का बोध भी रखता है।

प्रचलित फैशनेबुल शब्द में कहूँ तो व्यक्ति - पूजा, हीरो-वरशिप, इस काव्य रचना में भी खूब ही आई है। कवि केवल नेहरू व्यक्ति से ही नहीं बल्कि उनके माता, पिता, बहिन, बेटी और धेवतों तक से व्यक्तिगत श्रद्धा-मोह से बँधा है। निजी रूप से मैं व्यक्ति-पूजा का हामी नहीं हूँ, स्वयं नेहरू भी नहीं थे, पर अब इसका क्या किया जाये कि पिछले ४०-४५ वर्षों से यह नेहरू परिवार हमारे जनमानस की राष्ट्रीय भावना में रोमानियत भरता रहा है। कवि 'बिस्मिल' की एक बहुत पुरानी पंक्ति याद आ रही है—

"शमा महफिल देख ले, यह घर का घर परवाना है," परिवार की हैसियत से यह दर्जा देश के किसी जननायक को नये पुराने काल में कभी नहीं मिला और केवल इसीलिए जनभावना का पूर्ण मान रखते हुए ही मैं केवल नेहरू परिवार के प्रति इस व्यक्ति-पूजा के भाव को इतिहास की एक

उम्दा मजबूरी मान कर स्वीकार करता हूँ, उसे इस काव्य का दोष नहीं मानना।

पुस्तक आपके हाथों में है। मेरा विश्वास है कि इसे पढ़ते हुए घर बैठे शब्दों की सुन्दर रंगीन फिल्म देखने का सा रस इस आज के पाठक को मिलेगा; सौ वर्ष बाद किसी समाजवादी शोधक के हाथ किसी पुस्तकालय में रक्खी हुई लग जायेगी तो उसे भी वही ताजगी मिलेगी। सच तो यह है कि यहाँ पर 'सिजो लॉयड' फिल्म का माध्यम ही निकम्मा साबित हो जायेगा; कवि 'पङ्कज' की यह शब्द फिल्म तब भी इस विषय को जो कि स्थायी इतिहास का विषय है, बराबर ताजगी से पेश करने में समर्थ सिद्ध होगी। तथास्तु !

चौक—
लखनऊ

अमृत लाल नागर
८-१०-६४

अनुक्रमणिका
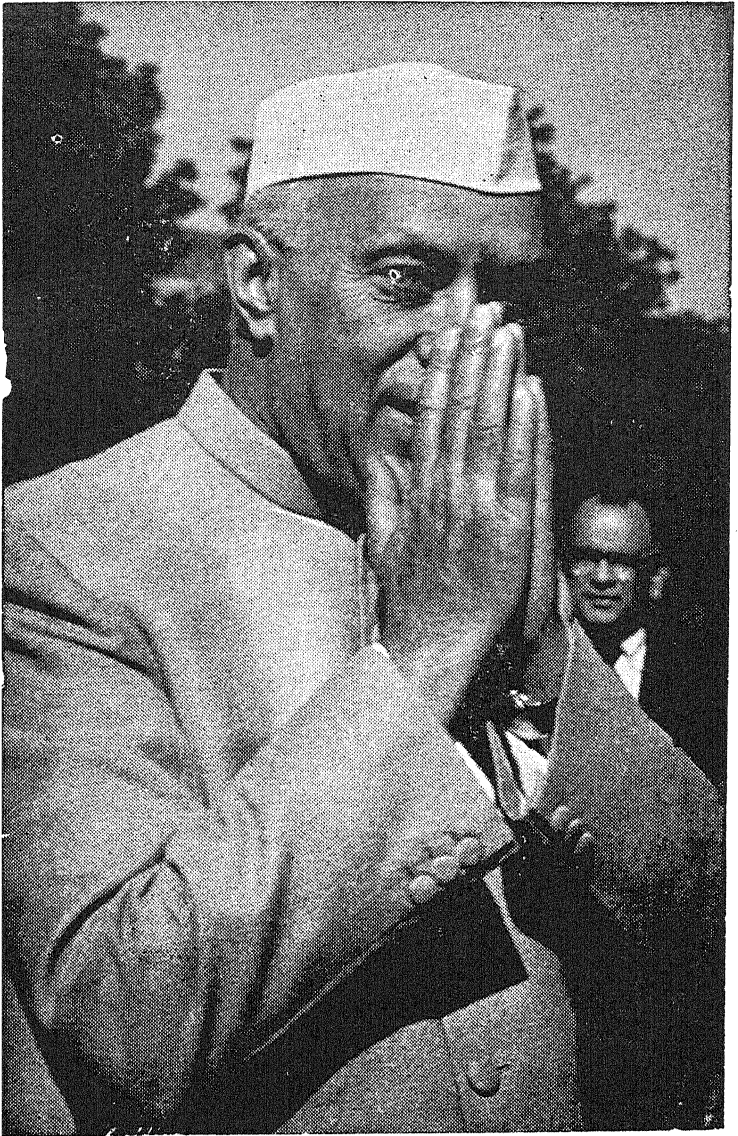
जननायक नेहरू की यह मुद्रा अब कहाँ मिलेगी ?

बगिया हुई बिहाल री

कलियाँ रोयी रो पड़े सुमन,
रोयी गुलाब की ·डाल री ।
निधन ·सँदेशा पा 'नेहरू' का,
बगिया हुई बिहाल री ।।

गुन-गुन करते हुए भ्रमर सब भौचक्के से रह गये,
एक सास में पवन देवता दुख की गाथा कह गये ।
नही हुआ विश्वास किसी को बिन बादल बरसात का,
फिर भी इस दुख की वर्षा से कई घरौंदे ढह गये ।

गलियों-गलियों की करुण कथा,
यह कहने लगी कराह कर।
आज शांति के दूत बिना यह,
धरा हुई कंगाल री॥

असह वेदना से धरती का कण-कण तक थर्रा उठा,
भीख माँगने वाला घायल कोढ़ी तक घबरा उठा।
'नेहरू-चाचा' आँखें खोलो गले लगालो फिर हमें,
कहते-कहते शिशुओं का भी गला हाय भर्रा उठा।

'इंदिरा'—हृदय की मौन व्यथा,
कह उठी अश्रु की धार से।
बिना पंख के जैसे पंछी,
वही हमारा हाल री॥

रूप भयंकर धारण करके काल किधर से आ गया,
जो घर-घर देहरी-द्वार पर, मातम बनकर छा गया।
धरा कॅपी औ नील-गगन ने अपने लोचन भर लिये,
निधन नहीं यह बज्रपात था जो दारुण दुख ढा गया।

कुसमय ने लाल 'जवाहर' सा,
अनमोल रत्न हा! लूटकर।
बिखरा दी सम्पूर्ण धरा पर,
यह 'मोती' की माल री॥

डूब गया संसार शोक में यह क्या से क्या हो गया,
शान्ति-घाट पर शान्ति-पुजारी क्या सदैव को सो गया?
नही-नहीं वह युगों-युगों तक अमर रहेगा देवता,
खेतों को अस्थियाँ दानकर बीज शान्ति के बो गया।

अपनी पीड़ा को भारत माँ,
नयनों में ही अब सोख ले ।
अपने हाथों से ही अब तू,
अपना मुकुट सँभाल री ॥

अभिवादन

हे अस्थि-कलश ! तुमको प्रणाम,
मेरा प्रणाम जग का प्रणाम ।
हे वंदनीय ! अभिनन्दनीय !
तुम को जल, थल, नभ का प्रणाम ।।

हे ज्योति पुंज के शान्त सदन !
हे मौन तपस्वी ! दिव्यानन !
तुम धन्य-धन्य जो आज बने,
जन-नायक के जीवन दर्पण ।
हे अवर्णीय ! मनहर ललाम !
स्वीकार करो स्नेहाभिराम !
बच्चों, बूढ़ों, नवयुवकों का,
सबका प्रणाम, सबका प्रणाम ।

हे अस्थि-कलश ! तुमको प्रणाम,
मेरा प्रणाम जग का प्रणाम ।।

अस्थि-कलश

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज,
तुम नगर-नगर जिस डगर चले ।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

नयनों में सावन घन लेकर,
दिल्ली की जनता उमड़ पड़ी ।
शोकातुर हृदय विदीर्ण लिये,
कुछ इधर खड़ी कुछ उधर खड़ी ।

तव दर्शन के हित बाल वृन्द,
भूखे प्यासे ही निकल पड़े ।
छज्जों, कन्धों, फुटपाथों पर,
सुमनों की झोली लिये खड़े ।

वे बालक क्या समझें, प्रधान—
मंत्री की क्या परिभाषा है ।
उनके तो 'नेहरू' चाचा थे,
वह जिधर चले वे उधर चले ।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले ।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ।।

तुम कई दिवस से मौन पड़े—
थे, घर में, उन्हें रुलाने को।
क्यों इतने शरमाये जो उठ—
तक पाये नहीं खिलाने को।

'संजय' 'राजीव' तुम्हें अपने,
कर कमलों पर बिठला लाये।
मोटर-गाड़ी पर अपने ही,
साहस से तुम्हें चढ़ा आये।

पीछे 'शास्त्री' 'जाकिर-हुसेन',
गंगा-यमुना थे बहा रहे।
संगम तो पीछे-पीछे था,
तुम आगे-आगे किधर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

नयी दिल्ली में प्रधानमंत्री निवास से राजीव और संजय श्री नेहरू के अस्थि-कलश को मोटरगाड़ी में रखने के लिए ले जाते हुए। उपराष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन और मनोनीत प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री पीछे दिखाई दे रहे हैं।

पग-पग पर चादर बिछी हुई—
थी लाल गुलाबी फूलों की।
माल्यार्पण करने को आकुल,
जनता थी दोनों कूलों की।

भीगी पलकों से बोझिल मन,
व्याकुल थे दर्शन करने को।
बस तुम्हें निरखते ही नयनों—
से जल-प्रपात थे झरने को।

टकटकी लगाये देख रहे—
थे उधर, जिधर से तुम निकले।
तुम निकले तो उन नयनों की,
सीपों से मोती बिखर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

आगे - आगे धीरे - धीरे,
चल रही तोप की गाड़ी थी ।
पीछे-पीछे ट्रक की काया,
पहने गुलाब की साड़ी थी ।

उसके पीछे था अश्रुपूर्ण,
परिवार तुम्हारा अस्थि-कलश ।
मुरझाये फूलों के तन पर,
आँसू पड़ते थे बरस-बरस ।

स्टेशन तक ही तुम चले—
तुम्हारे साथ सहस्त्रों गात चले ।
युग-युग तक अमर रहें 'नेहरू',
गुन-गुन करते सब भ्रमर चले ।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले ।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ।।

प्रधानमंत्री-वास से निकलती हुई तोपगाड़ी।

सैनिक हथियार किये नीचे,
थे खड़े शोक की मुद्रा में।
दे रहे सलामी थे तुमको,
पर तुम डूबे चिर निद्रा में।

तुम स्वप्न सजाये देख रहे—
थे पड़े कौन से भारत को।
जिस रथ के सारथि रहे सदा,
हा ! भूल गये उसके पथ को।

तुम छोड़ अकेला आज हमें,
बोलो—बोलो ! अब किधर चले ?
इंगित करके ही बतला दो,
तो भारत का रथ उधर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

थी प्लेटफार्म पर लगी हुई,
सम्पूर्ण श्वेत रँग की गाड़ी।
जैसे कोई कल की विधवा,
पहने सफेद मोटी साड़ी।

उन जुड़े हुए डिब्बों के भी,
मन में उठती थी एक टीस।
थे बीस मगर उनकी टीसों—
में फर्क न था उन्नीस बीस।

'संजय' 'राजीव' तुम्हें फिर से,
ट्रक से उतार जब उधर चले।
तब सूजी—सूजी आँखों के,
परनाले बनकर नहर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज, तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥
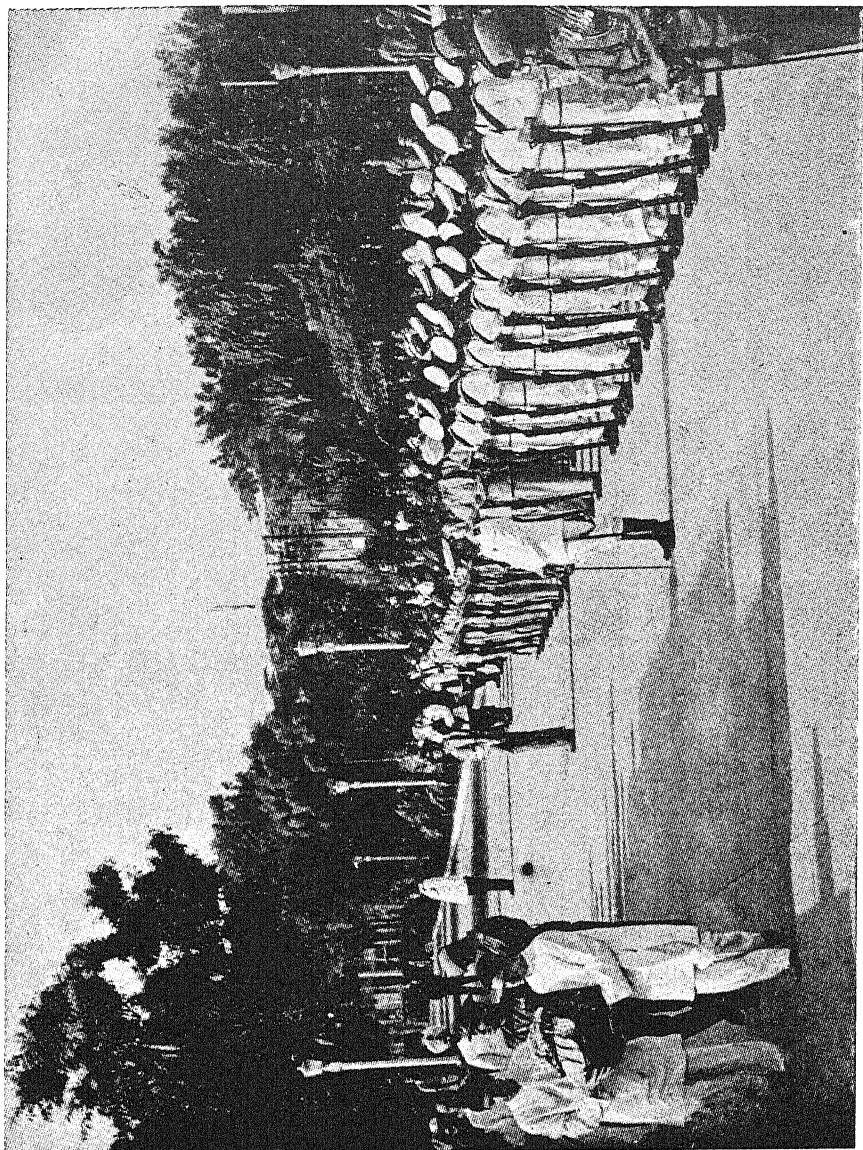
कर दिया तुम्हें आसीन पुनः,
जब श्वेत हंस के पंखों पर।
कुम्हलायी सी 'इंदिरा' तभी,
बैठी सन्निकट नयन भर कर।

खिड़की के शीशों के बाहर,
उमड़ा था पीड़ा का सागर।
हर मधु माखन की ग्वालिन ने,
ढरकाई थी दुख की गागर।

जब बैठ गये संगी साथी,
तब तुम प्रयाग की ओर चले।
दुख की आँधी से बुझे दीप,
हा ! तोड़ स्नेह का जिगर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

उस रेल मार्ग पर जगह-जगह,
जनता थी ऐसे अड़ी हुई।
जैसे खेतों में पकी फसल,
पाले से मारी खड़ी हुई।

वह जोड़-जोड़ कर हाथों को,
श्रद्धा के सुमन चढ़ाती थी।
कुछ बिलख-बिलख कर रोती थी,
कुछ सिर धुन-धुन पछताती थी।

तुम जन-जन की पीड़ा पीते,
अपने पथ पर ही बढ़े चले।
गाजियाबाद तक आते ही,
तुम तोड़ सभी की कमर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

इलाहाबाद जाते हुए मार्ग में अस्थि-गाड़ी के गाजियाबाद स्टेशन पर पहुँचने पर सभी तो अपना आपा खो बैठे और बच्चे-बूढ़े अपने को रोक न सके और फूट-फूट कर रो पड़े।

वे फूट-फूट ऐसे रोये,
बच्चे, बूढ़े औ नौजवान।
प्राणों के तीर न चल पाये,
थी टूट गयी तन की कमान।

अपना आपा ही खो बैठी,
विह्वल होकर बेसुध जनता।
समझाता कौन किसे उस क्षण,
जब व्यथित हो उठी स्वयं व्यथा।

जिन पर दारुण दुख पड़े बहुत,
फिर भी न कभी आँसू निकले।
वे भी आखिर को पिघल उठे,
जब पत्थर के कण पजर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

मातम छा गया अलीगढ़ में,
सब हिन्दू मुस्लिम दौड़ पड़े।
गाड़ी के वहाँ पहुँचने तक,
घंटों पहले से लोग खड़े।

मुस्लिम महिलाओं के नकाब,
हा ! अश्रुपात से भीग गये।
जो हृदय पसीजे नहीं कभी,
वे भी तो वहाँ पसीज गये।

अभिनंदन, वंदन करने को,
जन-जन के उर में दीप जले।
होली से आकर ईद मिले,
तुम इससे बनकर कुँवर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

तुम भले न उठकर गले मिले,
पर मन ही मन में हर्षाये।
इसलिए कि तुम पर फूल—
चढ़ाने हिन्दू मुस्लिम सब आये।

इस जाति-पाँति के भेद भाव—
को कभी नहीं तुमने माना।
तुमने तो जीवन भर केवल,
मानवता को ही पहिचाना।

तुम प्रिय गुलाब के फूल सदृश,
आजीवन फूले और फले।
कटुता के काँटों में भी तुम,
सीना ताने ही निडर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

जंक्शन टूँडला का भारी,
भारी-भारी सा लगता था।
इतना था बोझ पड़ा दुख का,
जो शीश न ऊपर उठता था।

क्या कभी किसी के दर्शन को,
ऐसा मेला था लगा वहाँ ?
क्या कभी स्नेह की ज्योति लिए,
ऐसा दीपक था जगा वहाँ ?

था बद्रीनाथ किसी दृग में,
तो किसी नयन में ऋषीकेश।
पर जलधारा हरिद्वार सदृश,
अधिकांश बहाने उधर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

आबाद शिकोहाबाद नगर,
बर्बाद दिखाई पड़ता था।
हर रुँधे कण्ठ से बस केवल,
स्वर यही सुनाई पड़ता था।

हा पंडित जी ! हा नेहरू जी !
हा देश दुलारे ! कहाँ गये ?
पिंजड़े के पंछी कहते थे,
नयनों के तारे कहाँ गये ?

बँध गयीं हिचकियाँ जन-जन की,
जब तुम्हें नयन भरकर देखा।
पर विदा तुम्हारे होते ही,
बिछुड़े बछड़े सब हुँकर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

छोटे-छोटे स्टेशन पर भी,
गाड़ी पल भर सो जाती थी।
भावों की गंगा में बहकर,
स्वयमेव कहीं खो जाती थी।

दुख से उफनाई सरिताएँ,
क्या जाने पथ पर कहाँ-कहाँ।
पर जितने जहाँ उठे बादल,
उतनी थी वर्षा हुई वहाँ।

प्रत्येक जगह हे अस्थि-कलश !
तुमको मनचाहे फूल मिले।
प्राणों को प्यारे थे इससे,
वे साथ-साथ हर डगर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

मीठा पानी जो पीते थे,
उन नयनों में भी खारा जल ।
यह नगर इटावा कहता था,
हा ! टूट गया सबका संबल ।

बच्चे रोये बूढ़े रोये,
सिर फोड़ लिये विधवाओं ने ।
टप-टप-टप आँसू बहा दिये थे,
वहाँ खड़ी महिलाओं ने ।

नवयुवक वहाँ के नेत्र भरे,
श्रद्धांजलि देने को निकले ।
आरती तुम्हारी करने को,
सब झुका-झुका कर नजर चले ।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले ।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ।।

तुम नगर कानपुर आओगे,
यह सुन अधिकारी अकुलाये ।
कैसे प्रबन्ध हो स्टेशन पर,
जो जनता सुमन चढ़ा पाये ।

इसमें संदेह नहीं उनका,
अपना प्रबन्ध था जोरदार ।
पर रोक सके क्या बाँध कभी,
उमड़ी नदियों की तेजधार ।

निर्धारित अवसर से पहले,
बन्धन प्रबन्ध के टूट चले ।
लाखों संख्या में बिलख-बिलख,
परिवार वहाँ इस कदर चले ।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले ।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ।।

दिल्ली के बाद कहीं देखा,
यदि जन समूह भारी विशाल ।
तो वह थी नगरी यही एक
जिसका था निश्चय बुरा हाल ।

जिस दिन से तुमने ली समाधि,
उसका सुहाग ही उजड़ गया ।
उस हरे भरे उपवन का मानो,
कल्पवृक्ष हीं उखड़ गया ।

तुम अपने जीवन में उससे,
दो - चार नहीं सौ बार मिले ।
उसके अन्तस में तुम अपना,
चिर-स्नेह जगा अब किधर चले ।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले ।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

उस फूलबाग के फूलों की,
चितवन में तुम थे बसे हुए।
उस मालरोड की भुज विशाल—
में अब तक थे तुम कसे हुए।

पर आज न जाने क्यों तुमने,
उन सबसे नाता तोड़ दिया।
उन कोमल फलों को माली,
किसके आश्रय पर छोड़ दिया।

अब आज स्वर्ग तक पहुँचाने,
वह क्यों न तुम्हारे साथ चले।
तुम जिधर कहो वह उधर चले,
तुम जिधर चलो वह उधर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज, तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

जब कभी तुम्हारा चेतन तन,
आया उस नगरी के अन्दर ।
स्वागत में जन-जन दौड़ पड़ा,
रख लिया तुम्हें निज पलकों पर ।

उससे भी कई गुनी जनता,
दर्शन करने को वहाँ खड़ी ।
नयनों में लेकर पीड़ा की,
काली घनघोर घटा उमड़ी ।

तुम जब तक आये नहीं वहाँ,
श्वासों के चरखे नहीं चले ।
तन की चादर के तार-तार,
हा ! टूट-टूट कर बिखर चले ।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले ।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ।।

कोसों-कोसों की दूरी तक,
पथ पर थी जनता खड़ी हुई।
जैसे बिन दूलह की बरात,
श्मशान घाट पर पड़ी हुई।

धड़कनें मिलों की चिमनी की,
सब बंद हो गयीं थीं उस क्षण।
हा ! लुटा-लुटा सा लगता था,
व्यापार केन्द्र का वह प्रांगण।

कुहराम मच गया पल भर में,
जब तुमने नगर प्रवेश किया।
थी तिल भर जगह न शेष जहाँ,
उस पथ से भी तुम गुजर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज, तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

तुमको कुछ ने माल्यार्पण कर,
कुछ ने तोपों की दे सलाम।
कर लिया बोझ मन का हलका,
भरकर नयनों में छबि ललाम।

पर मन मारे लाखों प्राणी,
दर्शन तक हाय न कर पाये।
धक्का-मुक्की में मन पंछी,
तन पिंजरा तोड़-तोड़ लाये।

अगणित पुष्पों की पंखुरियाँ,
हा! तुम तक पहुँच नहीं पायीं।
तव दर्शन केवल उन्हें हुए,
जो निबल जनों को कचर चले।

हे अस्थि-कलश! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

जो कुछ भी हो उस नगरी की,
धरती दर्शन की प्यासी थी ।
प्रासादों, झोपड़ियों, गलियों,
में छाई वहाँ उदासी थी ।

अब अपने लाल 'जवाहर' को,
उसने सदैव को लुटा दिया ।
विधि ने रत्नों की नगरी से,
अनमोल रत्न हा ! उठा लिया ।

तुम धैर्य्य दिलाकर चले गये,
पर धैर्य्य कहाँ से उसे मिले ।
बस यही धैर्य्य है तुम अपनी,
धरती पर होकर अमर चले ।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले ।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

यह बिंदकी है वह फतेहपुर,
आगे वह रहा प्रयागराज।
यह रोती है वह चिल्लाता,
पर तीर्थराज पर गिरी गाज।

हर एक पपीहा मधुवन का,
पी-कहाँ-कहाँ चिल्लाता था।
यह पवन न जाने आज वहाँ,
क्यों हहर-हहर हहराता था।

तुम मोह त्याग कर उन सबका,
अब किससे करने प्यार चले।
इस मर्त्य-लोक में क्या दुख था,
जो छोड़ यहाँ की डगर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

हे जननायक के पूज्य पिता !
तुमने जो जग को दान दिया।
वह आज विधाता ने जाने,
क्यों हम दुखियों से छीन लिया।

क्या स्वर्ग-लोक को भी उसकी,
पड़ गयी आज आवश्यकता ?
क्या उसकी किरणों के प्रकाश–
बिन, सूख गयी कोई लतिका ?

तुम लौटा दो वह ज्योति हमें,
तो हमको खोई शक्ति मिले।
अलि, कलि का मुरझाया उपवन,
फिर धीरे-धीरे सुधर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

हे माँ स्वरूपरानी! तुम पर,
न्यौवछार जग की प्रतिमाएँ।
तुमने वह अनुपम लाल दिया,
जिस पर रीझी सब ललनाएँ।

हम तुम्हें कहें माँ कौशल्या,
या कहें कृष्ण की महतारी।
तुमने दी ऐसी दिव्य-ज्योति,
जो थी इस त्रिभुवन से न्यारी।

तुम धन्य, तुम्हारी कोख धन्य,
जिसने जननायक को जन्मा।
वह देश धन्य जो उधर चले,
आलोक तुम्हारा जिधर चले।

हे अस्थि-कलश! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

हे तीर्थराज तुम धन्य जहाँ—
पर 'नेहरू' जी ने जन्म लिया।
पाकर तव चरणों का प्रसाद,
भारत का ऊँचा भाल किया।

क्या तुमसे बढ़कर हो सकता,
दुख को भी दुख इतना भारी।
तुम ही तो उनको गोद खिलाने-
के थे केवल अधिकारी।

जब तुम्हें मिला यह समाचार,
पंडित जी स्वर्ग सिधार गये।
तो सुनते ही फल-फल, फल-फल,
नयनों से आँसू बिखर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

लो आज तुम्हारे इकलौते–
को तुम्हें सौंपने आये हम ।
लज्जित हैं मन में बहुत–
कि तुमको रूप न वह दे पाये हम ।

तुमने गुलाब का फूल दिया,
हम शूल चुभाने को आये ।
तन तो दिल्ली में फूँक दिया,
अवशेष अस्थियों को लाये ।

आदेश 'जवाहर' ही का था,
वह खून तुम्हारा ही तो था ।
हम तो केवल आज्ञा पालन–
करने को ही बस इधर चले ।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले ।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

तुमने छाती पर पत्थर रख,
कहना हम सबका मान लिया।
पर परवशता के बन्धन में,
वह कड़वा-कड़वा घूँट पिया।

उन्मत्त बने तुम बेसुध हो,
भटके जन-जन का स्नेह लिये।
उस कलिंदजा से पूछ रहे थे,
कहाँ 'जवाहर-लाल' प्रिये ?

इस प्रात समय की बेला में,
अनगिनत गोद में लाल लिये।
हा ! श्वेत रंग की गाड़ी से,
तुम टकराने क्यों निडर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ।।

तुमने तो पलक पावड़ों को,
उनके स्वागत में बिछा दिया।
फूलों की कौन कहे फूलों—
का पथ ही मानो बना दिया।

स्टेशन से ले आनन्द-भवन,
आनन्द-भवन से संगम तक।
श्वासों के रथ थे खड़े हुए,
अन्तस में कड़वी लिये कसक।

हे अस्थि-कलश ! जब तुमने उस,
मातम की नगरी को देखा।
तब घाव तुम्हारे कुनबे के,
कुछ और वेग से उभर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

रुकते ही गाड़ी स्टेशन पर,
जनता सब आपा खो बैठी।
दर्शन करने से पहिले ही,
हा ! फूट-फूट कर रो बैठी।

उस जन समूह ने स्टेशन के,
अवरोध दिये थे सभी तोड़।
औ तोड़ दिये थे प्लेटफार्म—
पर बने हुए सब नये मोड़।

धीरज का बाँध बाँधने को,
'संजय' 'राजीव' पुनः सँभले।
तुमको गोदी में ले करके,
डिब्बे से नीचे उतर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

उसके उपरान्त 'विजय-लक्ष्मी',
'इंदिरा' और 'कृष्णा' उतरीं।
थे वदन सभी के मुरझाये,
सूजी आँखे अलकें बिखरीं।

थे राजपूत सैनिक सम्मुख,
सम्मान जिन्होंने प्रकट किया।
जो जनता थी उस जगह खड़ी,
उसने निज उर का स्नेह दिया।

सुरभित सुमनों से सजी हुई,
थी खड़ी एक ट्रक बाहर ही।
तुम उन्हीं धेवतों का संबल—
ले धीरे-धीरे उधर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

जब तुम्हें खुली उस गाड़ी में,
उन सुकुमारों ने बिठा दिया।
तब करने को तुमको प्रणाम,
सेना ने मस्तक झुका दिया।

उत्तर-प्रदेश के राज्यपाल,
श्री 'विश्वनाथ' ने सर्व प्रथम।
माल्यार्पण तुमको किया किन्तु—
वे रोक न पाये अपना गम।

श्रीमती 'सुचेता' 'चन्द्रभान'—
ने उसी भाँति सम्मान किया।
जब नगर-प्रमुख 'वृजनाथ' बढ़े,
जन-जन के आँसू बिखर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥

जनता ने उस चलती ट्रक पर,
फूलों की झड़ी लगा दी थी।
तुम विजयी हुए वहाँ जब थे,
उस दिन की याद दिला दी थी।

पर इस दिन में औ उस दिन में,
अंतर था माटी-सोने का।
वह दिन था हर्ष मनाने का,
यह दिन था केवल रोने का।

तुम साथ-साथ बरसात लिये,
जब अपने घर की ओर चले।
तब नन्हें-नन्हें बच्चों के दल,
सिसक-सिसक कर उधर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले॥

आनन्द-भवन का दृश्य करुण,
किन शब्दों में बतलाये कवि ।
था सूर्योदय का समय किन्तु,
लगता था डूब गया है रवि ।

उस घर के दास-दासियों ने,
सोचा न कभी था यह मन में ।
उनके जीवन - धन जीते जी,
फिर मिल न सकेंगे जीवन में ।

वे फूट - फूट ऐसे रोये,
हा ! बाँध धैर्य्य के टूट चले ।
उनके जीवन की आशाओं—
के दिन ही मानो गुजर चले ।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज, तुम नगर-नगर जिस डगर चले ।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ।।
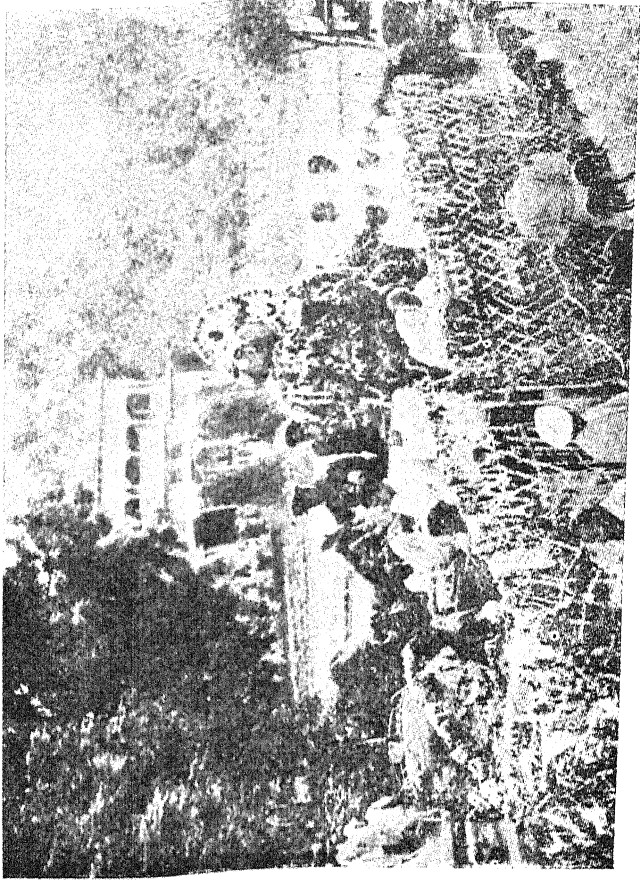
और जब अस्थि-कलश की संगम-यात्रा प्रारम्भ हुई, तो बूढ़े आनन्द भवन ने सोचा—'मोतीलाल ने तो जवाहर को मेरे सुपुर्द किया था, लेकिन.........

आनन्द-भवन के आस-पास,
खिड़कियों, छतों, मुंडेरों पर।
अगणित प्राणी थे खड़े हुए,
कुछ लटक रहे थे पेड़ों पर।

अस्सी वर्षों की आयु पार—
कर आयी वृद्धा एक वहाँ।
जो चरण चूमते चीख पड़ी,
'पंडित जी मेरे गये कहाँ' !

शिशुओं ने भी अभिवादन कर,
तुमको मन माँगा प्यार दिया।
सन्निकट तुम्हारे गीता के भी,
श्लोक डुलाते चँवर चले।

हे अस्थि-कलश ! ले ज्योति पुंज तुम नगर-नगर जिस डगर चले।
अंतिम दर्शन हित जन समूह भी अश्रु बहाते उधर चले ॥